Islamic theory of the State

1206 ई. से 1526 ई. का काल अनेक कारणों से भारतीय राज्य-निर्माण व विकास के इतिहास का प्रथम संधि युग है। यह वह समय है जब भारतीय राज्य इस्लामी राज्य के सिद्धांत से संपर्क में आया, भारत में प्रथम मुस्लिम राज्य स्थापित हुआ, भारतीय इतिहास का मध्ययुग प्रारंभ हुआ, दिल्ली राजनीति का केंद्र बना, भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तनों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ तथा अंततः लगभग अगली दो शताब्दियों तक अस्तित्व में रहे मुगल साम्राज्य के लिए आधार तैयार हुआ।[1] इस युग का प्रारंभ 1193-94 ई. में मुहम्मद गौरी अथवा शिहाबुद्दीन की दिल्ली, बनारस और अजमेर पर विजय के साथ हुआ। इस विजय ने प्रायः संपूर्ण उत्तरी भारत को गौरी के अधीन ला दिया क्योंकि सिंध, मुल्तान अर्थात पंजाब पहले ही उसके अधीन थे और 1206 ई. तक बंगाल, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश सब को अधीन कर उसके एक तुर्क दास कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली के प्रथम सुल्तान रूप में दिल्ली सल्तनत की नींव रखी।

कुलके और रोथरमंड जैसे इतिहासकारों का मानना है कि ऐबक और इल्तुतमिश के अधीन स्थापित दिल्ली सल्तनत से लगभग छह शताब्दियों के पश्चात भारत में गुप्त और हर्षकालीन साम्राज्य जैसे विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई[2] परंतु आर.सी. मजूमदार का मत है कि यह एक भ्रांतिपूर्ण धारणा है क्योंकि खिलजी शासन (1300-1320 ई.) और तुगलक शासन (1325-1335ई.) के छोटे समय को छोड़ कर मुस्लिम अथवा मुख्यतः तुर्की शासन कभी भी विंध्य पर्वतों के पार नहीं जा पाया। कश्मीर भी अविजित रहा। अतः दिल्ली सल्तनत के समय (1206-1526 ई.) में ~~ऊपर वर्णित~~ छोटे-छोटे युगों को छोड़ कर संपूर्ण भारत पर किसी एक शासक का शासन स्थापित नहीं हो सका और प्राक मध्ययुगीन भारत की भांति अनेक छोटे-बड़े राज्यों का अस्तित्व रहा जैसे दक्खन में बाहमनी व विजय नगर साम्राज्य, पश्चिम में गुजरात और मेवाड़, तथा पूर्व में बंगाल और उड़ीसा और यह स्थिति अगली लगभग 2½ शताब्दियों तक चली जब मुग़लों ने सोलहवीं शताब्दी के मध्य में एक स्थिर साम्राज्य की स्थापना की।[3]

राज्य का इस्लामी सिद्धांत

दिल्ली सल्लनत की स्थापना से भारतीय राज्य की प्रकृति में नए तत्वों का मिश्रण प्रारंभ हुआ। ये तत्व राज्य के इस्लामी सिद्धांत अथवा इस्लामी राजनीतिक सिद्धांत का परिणाम थे और अंततः कुरान के सिद्धांतों पर आधारित थे। कुरान में वर्णित दर्शन के अनुसार संप्रभुता केवल अल्लाह में स्थित है, शेष सब मात्र उसकी प्रजा है। उसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति, कबीला, समुदाय, वर्ग, यहां तक कि किसी राज्य की संपूर्ण जनसंख्या भी संप्रभु नहीं हो सकती। द्वितीय, संपूर्ण विधायी शक्तियां भी अल्लाह में नीहित हैं। अल्लाह द्वारा निर्धारित नियमों अथवा विधियों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है।

तृतीय, इस्लामी राज्य अल्लाह द्वारा पैगंबर के माध्यम से प्रदत्त विधि पर ही आधारित होना चाहिए। कोई भी सरकार इस राज्य को चलाने व आज्ञापालन की अधिकारी केवल अल्लाह के कानून को कार्यान्वित करने वाले राजनीतिक अभिकरण के रूप में ही होगी और केवल उसी सीमा तक होगी जहां तक वह अल्लाह के अभिकरण की क्षमता में कार्य करेगी।[4]

इस्लामी राज्य न तो पूर्णतः लोकतांत्रिक कहा जा सकता है क्योंकि संप्रभुता जनता में निवास नहीं करती और न ही धर्म-तंत्र कहा जा सकता है क्योंकि संप्रभुता अथवा शासन सत्ता एक विशिष्ट धार्मिक वर्ग/समुदाय में निवास नहीं करती जो स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि कहता हो। वस्तुतः इस राज्य में अल्लाह की पुस्तक अथवा कुरान ही संप्रभु होती है तथा संपूर्ण प्रशासन और न्याय-व्यवस्था कुरान में निर्दिष्ट विधि अथवा शरियत के आधार पर चलाए जाते हैं और केवल उन क्षेत्रों में मुस्लिम जनसमुदाय मतैक्य के आधार पर निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है जहां कुरान में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है।[5] परंतु शासकों को इस क्षेत्र में बाध्य करने के लिए कोई संगठित धार्मिक अथवा राजनीतिक संगठन नहीं होता। यही कारण है कि अनेकशः सिद्धांतकार इस्लामी राज्य को और भारत में मुस्लिम शासन को धर्म-तंत्र कहने में संकोच करते हैं।

यहां उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मुस्लिम शासकों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे इस्लाम के एजेंट (अभिकर्ता) के रूप में कार्य करेंगे और उसके प्रचार तथा प्रसार को प्रोत्साहित करेंगे।[6] शासकों के इन कार्यों की व्याख्या और समीक्षा के लिए किसी धार्मिक अथवा राजनीतिक संस्था के अभाव में यह शासकों की स्वेच्छा पर निर्भर था कि वे इन कर्तव्यों की पूर्ति किस प्रकार करते। अतः अधिकांश मुस्लिम शासकों ने युद्ध व धर्म-परिवर्तन को अपने इन कर्तव्यों

की पूर्ति का साधन मान लिया था।[7] और इन कार्यों में मुस्लिम शासकों और प्रजा में कोई भेद नहीं था अपितु परस्पर सहभागिता थी। मुस्लिम आक्रमणकारियों की आक्रामकता और गैर मुस्लिम प्रजा पर लगाए जाने वाले करों के पीछे एक कारण यह भी था। परंतु भारत में अधिकांशतः मुस्लिम शासकों को स्थानीय जन समुदाय को स्थानीय नागरिक विधियों के अधीन छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा था।

वस्तुतः तुर्की शासन व्यवस्था जनजातीय संगठन पर आधारित थी जिसमें कुल का एक प्रधान होता था जो अपने सभी सबंधियों की राय के अनुसार कार्य करता था। हज़रत मुहम्मद ने पुराने कबीलों की इकाई को समाप्त कर मदीना में मुस्लिम समाज को एक राजनीतिक संगठन का रूप दिया। अनेक कबीलों के प्रधानों ने उन्हें अपना मुखिया बना लिया तथा मुहम्मद ने पैगंबर के कार्य, न्याय संबंधी कार्य, कानूनी कार्य, सेनापति के कार्य आदि सभी प्रकार के कार्य अपने नियंत्रण में रखते हुए इस्लाम को व्यापक संगठनात्मक रूप प्रदान किया। उन्होंने धार्मिक आदर्शवाद पर आधारित सामाजिक व राजनीतिक संगठन स्थापित किया। उनके द्वारा स्थापित राज्य में केंद्रीय स्थान ईश्वर का था और राजनीतिक प्राधिकार ईश्वरीय कानून अथवा शरियत में निहित थे।[8] ये दैवीय कानून अथवा शरियत कुरान में स्पष्ट किए गए हैं और पैगंबर के उपदेशों के रूप में नीहित सिद्धांतों से उनकी पुष्टि होती है। कुरान में क़िसी विशेष प्रकार के राज्य की व्यवस्था नहीं की गई है और न ही कोई व्यवस्थित राजनीतिक निर्देश दिए गए हैं।[9]

कुरान में केवल तीन सामान्य सिद्धांतों का संकेत मिलता है जिन पर विश्वास करना सभी सच्चे मुसलमानों के लिए आवश्यक माना जाता है :

1. जनता पर न्याय संगत शासन करो।
2. अपने कार्यों को सलाह या मशवरा लेकर पूरा करो।

3. अल्लाह की आज्ञा को पूरा करो, पैगंबर की आज्ञा मानो और अपने से अधिकार में बड़े लोगों की आज्ञा का पालन करो।[10]

कुरान के इन सिद्धांतों में किसी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का उल्लेख नहीं मिलता और न ही इस्लाम किसी प्रभुत्व संपन्न राजा, राज्य, अथवा राजवंश को मानता है। अंततः शरियत में बताए गए कानून ही इस्लामी राजनीति का आधार हैं। शेष राजनीतिक सिद्धांत पैगंबर के शासन, उनके उपदेश और उनके समय के घटना चक्र में खोजे जा सकते हैं।[11]

कुरान में सामाजिक जीवन और राजनीतिक संगठन के मोटे सिद्धांत दिए गए हैं।[12] इनमें मुसलमानों में एकता व संगठन पर बल दिया गया है तथा समुदाय को एकबद्ध व संगठित रखने के लिए सामुदायिक विचार-विमर्श को निर्णय का सही माध्यम बताया है। साथ ही मुसलमानों के लिए उचित तौर पर नियुक्त सत्ता की आज्ञा मानना बाध्यकारी रखा गया है। संगठित समुदाय से अलग होने का प्रयास भी भर्त्सना का पात्र है। कुरान में आए उल्लेखों के आधार पर इस्लामी राज्य के मूल सिद्धांत निम्नलिखित प्रतीत होते है :

- एककेंद्रवाद
- समानता
- समझौतावादी आधार
- धरोहर का सिद्धांत[13]

कुरान में *खलीफा* शब्द प्रतिनिधि के लिए प्रयुक्त हुआ है अर्थात खलीफा को पृथ्वी पर खुदा का प्रतिनिधि माना गया है।[14] यही उपाधि पैगंबर के उत्तराधिकारी के लिए भी उपयुक्त मान ली गई। यह बात उल्लेखनीय है कि पैगंबर ने अपने उत्तराधिकारी के बारे में कोई नियम नहीं बताए। इस्लामी कानून भी बादशाह

---

10. *Quran*, III,V.8; and XLII, 38 etc.
11. Maudoodi, *op. cit.*, pp. 31-35.

3. अल्लाह की आज्ञा को पूरा करो, पैगंबर की आज्ञा मानो और अपने से अधिकार में बड़े लोगों की आज्ञा का पालन करो।[10]

कुरान के इन सिद्धांतों में किसी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का उल्लेख नहीं मिलता और न ही इस्लाम किसी प्रभुत्व संपन्न राजा, राज्य, अथवा राजवंश को मानता है। अंततः शरियत में बताए गए कानून ही इस्लामी राजनीति का आधार हैं। शेष राजनीतिक सिद्धांत पैगंबर के शासन, उनके उपदेश और उनके समय के घटना चक्र में खोजे जा सकते हैं।[11]

कुरान में सामाजिक जीवन और राजनीतिक संगठन के मोटे सिद्धांत दिए गए हैं।[12] इनमें मुसलमानों में एकता व संगठन पर बल दिया गया है तथा समुदाय को एकबद्ध व संगठित रखने के लिए सामुदायिक विचार-विमर्श को निर्णय का सही माध्यम बताया है। साथ ही मुसलमानों के लिए उचित तौर पर नियुक्त सत्ता की आज्ञा मानना बाध्यकारी रखा गया है। संगठित समुदाय से अलग होने का प्रयास भी भर्त्सना का पात्र है। कुरान में आए उल्लेखों के आधार पर इस्लामी राज्य के मूल सिद्धांत निम्नलिखित प्रतीत होते है :

- एककेंद्रवाद
- समानता
- समझौतावादी आधार
- धरोहर का सिद्धांत[13]

कुरान में *खलीफा* शब्द प्रतिनिधि के लिए प्रयुक्त हुआ है अर्थात खलीफा को पृथ्वी पर खुदा का प्रतिनिधि माना गया है।[14] यही उपाधि पैगंबर के उत्तराधिकारी के लिए भी उपयुक्त मान ली गई। यह बात उल्लेखनीय है कि पैगंबर ने अपने उत्तराधिकारी के बारे में कोई नियम नहीं बताए। इस्लामी कानून भी बादशाह

को राजनीतिक संस्था के रूप में स्वीकार नहीं करता और इसी कारण उत्तराधिकार के कानून को भी स्वीकार नहीं करता। खलीफा द्वारा नामज़दगी और निष्ठा की शपथ ही काफी समझी जाती है। जब पैगंबर मृत्यु के नज़दीक थे तो उन्होंने अबू बक्र को धार्मिक अधिकार सौंप दिए। अबु बक्र को ही आम राय से खलीफा चुन लिया गया। इस प्रकार पैगंबर के पश्चात जो राजनीतिक सत्ता उभर कर आई, वही पश्चातवर्ती इस्लामी राजनीति व राज्य का आधार बन गई परंतु शीघ्र ही निर्वाचित खलीफा का स्थान वंशानुगत खलीफा अथवा मनोनीत खलीफा ने ले लिया।[15]

वस्तुतः प्रारंभिक इस्लामी राज्य एक धर्मतंत्रात्मक राज्य था जिसमें खुदा ही बादशाह अथवा शासक था। उसके द्वारा बनाए गए कानून ही संविधान के रूप में माने गए हैं। परंतु कुरान के नियमों के अनुसार छोटे नगर या राज्य पर शासन करना तो संभव था, जहां जनता की संख्या सीमित थी और उनकी राय लेना संभव था। मध्ययुग के विशाल व विविधतायुक्त राज्यों पर कुरान के नियमों को लागू करना कठिन था। पैगंबर ने भी भविष्य में होने वाले परिवर्तनों में सरकार चलाने के लिए कोई प्रतिबंध नहीं लगाए और निर्णयों को जातिगत समझौतों पर छोड़ दिया। प्रारंभिक खलीफा का शासन जनमत के ऊपर निर्भर था। खलीफा के अधिकार इस बात पर निर्भर थे कि वह कितना सुव्यवस्थित व न्यायपूर्ण शासन कर सकता था। यदि खलीफा अल्लाह के हुक्म को नहीं मानता तो लोगों को विरोध और आंदोलन करने का अधिकार था।[16]

जब खलीफा के स्थान पर शासक की वंशगत परंपरा आरंभ हो गई तो उसने सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए। हर सामान्य मुसलमान शासक निरंकुश माना गया, केवल उन्हें शरियत के कानूनों को स्वीकार करना था और जो लोग राजनीति में नहीं थे, उनके अधिकारों की रक्षा करनी थी। आम राय के आधार पर खलीफा का चुनाव पैगंबर के पश्चात मुश्किल से तीस वर्ष चल

पाया और चौथे खलीफा अली के समय से ही विरोध प्रारंभ हो गया जो अंततः उनके वध और उनके पुत्र हसन को हटाने में परिणत हुआ। यहां से इस्लाम की राजनीति में नया युग प्रारंभ हुआ। सभी खलीफाओं और सुल्तानों में यह आम बात हो गई कि वे अपना उत्तराधिकारी बनाते और उसका अधिकार स्वीकार करवाते। मुबायिआ ने अमयूया वंश को राजनीतिक दल के रूप में संगठित किया और खिलाफत को बादशाहत का रूप दिया। रूढ़िवादी लोगों का मानना है कि उसने इस प्रकार इस्लाम को राजनीतिक रूप देकर उसके धार्मिक स्वरूप को समाप्त कर दिया। इस्लामी धर्मतांत्रिक राज्य ने लौकिक राज्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया जो विस्तारवादी साम्राज्य बनने की दिशा में प्रयत्नशील हुआ। धीरे-धीरे खलीफा केवल एक प्रतीक मात्र रह गया जिसे 1258 ई. में हलाकू खान ने समाप्त कर दिया।

इस प्रकार इस्लाम में राजनीति को धर्म से अलग नहीं किया जाता। अतः इसमें बहुत पहले ही राज्य के रूप में समाज को व्यवस्थाबद्ध करने की आवश्यकता महसूस की गई।[17] हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के समय तक तो मुस्लिम राज्य ताकतवर और भली भांति संगठित हो चुका था। यह राज्य तात्विक रूप से एक ऐसा संगठित मुस्लिम समुदाय था जो इस्लामी मान्यताओं को सुरक्षित रखने, उनका प्रचार-प्रसार करने एवं उन्हें जीवन में उतारने के लिए सुविधाएं प्रदान करने वाली एक धार्मिक इकाई था। एक स्वतंत्र समाज के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए यह एक राज्य के रूप में संगठित हुआ ताकि अपना इस्लामी चरित्र बनाए रखते हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दबावों का सामना कर सके। इस्लाम में आस्था रखने वाला यह संगठित समुदाय 'उम्मत' कहलाता था और इस्लामी राज्य का केंद्र बिंदु था। इस्लाम के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ जब यह समुदाय आकार और प्राधिकार में बढ़ता गया, तो एक ऐसे राज्य की संकल्पना विकसित होती गई जिसके साथ कोई सीमांकित भू-क्षेत्र हो, एक प्रभुतासंपन्न शासक हो और एक शासक वर्ग भी हो। यह प्रवर्तन गज़नी के सुल्तान महमूद गज़नवी के समय में संपन्न हुआ जिसे 'आजम' अर्थात दुनिया का पहला सुल्तान माना गया और राज्य की संकल्पना अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची। इस प्रकार उपरोक्त अकाट्य तर्क हैं जिनके आधार पर सहज ही यह कहा जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत एक धर्मसापेक्ष राज्य था।